जैन विचारधारा में शिक्षा

—चांदमल करनावट
(उदयपुर)

शिक्षा संस्कार-निर्माण की एक प्रक्रिया है। जीवन को संस्कारित या सुसंस्कृत बनाने में शिक्षा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सत् शिक्षा ने व्यक्तियों के जीवन में नये प्राण फूंके हैं और राष्ट्रों का कायाकल्प भी किया है। यही कारण है कि समाज को प्रगति पथ पर अग्रसर करने तथा उसके नवनिर्माण में शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा की अहम् भूमिका को एकमत से स्वीकार किया है।

भारत को विश्वगुरु की प्रतिष्ठा प्राप्त है। इसका प्रमुख कारण यहाँ की समृद्ध शिक्षा व्यवस्था रही है। यहाँ के शैक्षिक वातावरण में भौतिकता के स्वर ही नहीं गूँजे परन्तु आध्यात्मिकता के प्रेरक पवित्र और मधुर स्वर प्रधान रहे हैं। यहाँ जड़तत्त्वों के विकास और तत्सम्बन्धी प्रगति को गौण मानकर चेतना शक्तियों के विकास का लक्ष्य ही मुख्य रहा है।

धर्मप्रधान देश भारत के सभी धर्मों में शिक्षा को बुनियादी स्थान और महत्त्व प्रदान किया गया है। सभी धर्मों में शिक्षा की अपनी-अपनी अवधारणा है, शिक्षा-व्यवस्था है और शिक्षा की विधियाँ हैं। इस लघुलेख में जैन विचारधारा में शिक्षा की अवधारणा और उसकी कुछ विशेषताओं पर लिखा जा रहा है।

शिक्षा की अवधारणा

(१) शिक्षा, धर्म का ही एक अंग है

धर्म क्रियाकाण्ड तक ही सीमित नहीं है। वह जीवन की समस्त प्रवृत्तियों एवं समस्त व्यवहारों से जुड़ा हुआ है। उनसे विलग धर्म का स्वरूप ही नहीं है। जीवन के इन व्यवहारों और प्रवृत्तियों में शिक्षा भी एक महत्त्वपूर्ण व्यवहार है, एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। धर्म जीवन को शांतिपूर्ण एवं आनन्दमय बनाने का साधन है। शिक्षा भी इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु कार्य करती है। अतः उसे धर्म का ही अंश मानकर जैन तीर्थंकरों ने साधु-साध्वियों के आचार के साथ स्वाध्याय को शिक्षा के रूप में जोड़ दिया है। इसके अनुसार दिन रात के ८ पहरों में से ४ प्रहर स्वाध्याय करने का विधान है।[1]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जवाहराचार्य के विचार से 'शिक्षा सम्बन्धी जैन विचारधारा धार्मिक चिन्तन-मनन की सहभागिनी भूमिका के रूप में ही पनपी तथा विकसित हुई है।'[2] परन्तु इससे यह नहीं माना जाय कि शिक्षा में समाज की उपेक्षा की गई है। आचार्य जवाहर के अनुसार धर्म और समाज व्यवस्था परस्पराश्रित हैं अतः शिक्षा जहाँ सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग है, वहाँ धार्मिक प्रक्रिया का भी। अतः शिक्षा सम्बन्धी जैन विचारधारा जितनी धार्मिक है उतनी ही सामाजिक भी।[3]

(२) शिक्षा विवेक शक्ति का विकास है

जैनागम दशवैकालिक में लिखा गया है:—[4]

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाहिइ सेय-पावगं॥

अर्थात् संयतात्माएँ पहले ज्ञान और पीछे दया (क्रिया) का आराधन करते हुए संयम मार्ग में अग्रसर होते हैं। क्योंकि अज्ञानी क्या आराधना करेगा? वह ज्ञान के अभाव में अपने कल्याण-अकल्याण का कैसे विभेद करेगा? यह कहकर जैन परम्परा में शिक्षा को विवेक शक्तियों के विकास का पर्याय माना है। जैन दृष्टि के अनुसार हिताहित, उचितानुचित तथा श्रेय और अश्रेय में भेद करके हित और श्रेय का निर्णय करने की क्षमता का विकास ज्ञान है अथवा शिक्षा है।

शिक्षा के अर्थ में जैन साहित्य में 'सम्यक्ज्ञान' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है जीवादि तत्त्वों का यथार्थ और सही ज्ञान। बहुत संक्षेप में कहें तो अपने आपका और अजीव तत्त्वों में सम्पूर्ण सृष्टि का परिवेश का ज्ञान और यथार्थ ज्ञान सम्यक्ज्ञान या शिक्षा है। आचार्य उमास्वाति ने सम्यग्दर्शन या सही श्रद्धा का व्याख्या स्वरूप लिखा 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्दर्शनम्'—[5] यही बात सम्यक्ज्ञान के लिए भी घटित होती है क्योंकि तत्त्वों में सही आस्था या विश्वास के साथ ही ज्ञान सम्यक्ज्ञान बनता है।

इन जीव अजीव पुण्य पाप आदि ९ तत्त्वों में से हेय, ज्ञेय और उपादेय का विभेद करके हेय को त्यागना और उपादेय को ग्रहण करना वांछनीय है। इन शक्तियों के विकास को ही सम्यक्ज्ञान माना है और यही सच्ची शिक्षा है।

श्री स्थानांग सूत्र में धर्म के दो भेद करते हुए बताया गया—'सुयधम्मे चेव चरित्तधम्मे चेव।'[6] अर्थात् धर्म दो प्रकार का है - श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। श्रुत अकादमिक पक्ष है जिसमें तत्त्वों की जानकारी इष्ट है तो चारित्रधर्म—आचरणपरक है। इस प्रकार विवेक विकास के लिए शास्त्रों का अध्ययन और उनका आचरण दोनों आवश्यक है।

(३) विश्वैक्य भाव का विकास शिक्षा है

सूत्र साहित्य में 'एगे आया' कहकर कि 'आत्मा एक है' सम्पूर्ण चेतन जगत की एकता को प्रमाणित कर दिया है। श्री आचारांग सूत्र का कथन कि 'जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है। जिसे तू शासित करना चाहता है, जिसे परिताप देना चाहता है वह भी तू ही है।' यह आत्मवत् बुद्धि सम्पूर्ण प्राणिजगत की एकता का मूलाधार है।[7] श्री दशवैकालिक सूत्र में कहा गया कि जो सभी जीवों को आत्मवत् समझता है वह आश्रवों/कर्मों के आगमन को रोककर पापकर्म का बन्ध नहीं करता। दूसरे शब्दों में मुक्तावस्था की ओर अग्रसर होता है। जैन विचारधारा में इन गुणों के विकास की अपेक्षा की गई है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी साधकों से। चाहे वे साधु-साध्वी हों, चाहे गृहस्थ। यही सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र रूप धर्म है और यही शिक्षा है। प्राणि मात्र के स्वरूप को जानकर उनके साथ आत्मौपम्य भाव स्थापित करने वाला ही सही अर्थों में शिक्षित कहलाने का अधिकारी है। विश्वकवि टैगोर की समस्त विश्व के साथ एकता की भावना रूप शिक्षा की व्याख्या भी इसी भाव का बोध कराती है।

(४) शिक्षा—सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र है

जैन साहित्य में यद्यपि शिक्षा के लिए 'सिक्खा,' 'विज्जा' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। परन्तु सम्यक्ज्ञान का प्रयोग व्यापक रूप में किया गया है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि जैन तीर्थंकरों ने ज्ञानमात्र को ज्ञान नहीं मानकर सम्यक्ज्ञान को ज्ञान की संज्ञा दी है। जो जड़-चेतन पदार्थों का सही-सही बोध कर लेता है, वह सम्यक्ज्ञानी है। रागद्वेषादि विकारों के विजेता परमात्मा द्वारा जड़-चेतन पदार्थों या जीवादि तत्त्वों का सही स्वरूप बताया गया है, उसे जानना यही सच्ची शिक्षा है। उसे जानकर उस पर सही विश्वास होना और तदनुरूप आचरण में प्रवृत्ति करना भी शिक्षा में समाहित है। आचार्य उमास्वाति ने इन तीनों सम्यग्ज्ञानादि के समन्वित स्वरूप को ही मोक्ष मार्ग बताया।[8] सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः। धर्माराधना हमें मुक्त बनाती है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञानादि की आराधना भी आत्मा को बन्धनों और दुःखों से मुक्ति प्रदान करती है।

(५) शिक्षा—जीवन का सर्वांगीण विकास है

जैन धर्म में केवल आत्मिक विकास की बात कही गई हो, ऐसा नहीं है। जैन विचारधारा में आध्यात्मिक विकास के साथ, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं बौद्धिक सभी प्रकार के विकास का कथन किया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में शिक्षा के बाधक कारकों का जहाँ वर्णन किया गया है वहाँ शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास की अवधारणा प्रकट हुई है।[9] इस प्रसंग में बताया गया है कि विद्यार्थी ५ कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता। वे पाँच कारण हैं:—अभिमान (थंभा), क्रोध (कोहा), प्रमाद (पमायेण), रोग और आलस्य (रोगेण आलस्सेण वा)। पीछे के कारणों की पहले व्याख्या करें तो ज्ञात होगा कि शिक्षा प्राप्ति में स्वस्थ और नीरोग शरीर को भी उतना ही महत्त्व दिया गया है जितना अभिमानरहितता या विनय और अप्रमाद को। मानसिक विकास में अभिमान, क्रोधादि कारण बाधक हैं। प्रमाद बहुत व्यापक शब्द है। जिसमें आत्मिक दोषों का भी समावेश होता है। जब-जब आत्मा अपने स्वरूप को भुलाकर इन्द्रिय विषयों में भान भूल जाता है वह प्रमादी कहलाता है। इस प्रकार इन सभी दोषों के निवारण पर बल देने का तात्पर्य सकारात्मक रूप से शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक तीनों प्रकार से जीवन के सम्पूर्ण और सर्वांगीण विकास पर बल देने से है।

इसके साथ ही जैन धर्म का लक्ष्य ज्ञान-ध्यानादि के द्वारा आत्मा की उच्चतम विकास स्थिति को प्राप्त करना है जिसमें आत्मा की निहित शक्तियों का पूर्ण प्रकटीकरण हो सके। जैन विचारधारा में यही श्रेष्ठ और उत्तम शिक्षा का स्वरूप है जो शिक्षार्थी की सभी प्रकार की शक्तियों का अधिकतम विकास कर सके और उसे श्रेष्ठतम की उपलब्धि करा सके।

(६) सापेक्ष, तर्कसंगत और व्यापक दृष्टिकोण का विकास—शिक्षा है

वही शिक्षा सार्थक और सफल मानी जाती है जो शिक्षार्थी को ऐसा व्यक्ति बनावे जिसके दृष्टिकोण में तर्कसंगतता, सापेक्षता के साथ उदारता हो। ऐसा व्यक्ति ही समाज में सुसमायोजित हो सकता है। जैन विचारकों के सामने शिक्षा का यह महत्त्वपूर्ण आधार रहा है। तत्त्वार्थसूत्रकार ने अधिगम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या ज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा—प्रमाणनयैरधिगमः[10] अर्थात् जो ज्ञान प्रमाण और नय से प्राप्त किया जाय वही सच्चा ज्ञान है। जैन सिद्धान्त में वस्तुविषयक किसी एक दृष्टिकोण को नय माना है और पूर्ण सभी अंशों को ध्यान में रखकर कथन करने को प्रमाण कहा गया है। किसी सापेक्ष कथन में नयाधारित कथन है परन्तु उसमें अन्य अपेक्षाओं दृष्टिकोणों को नकारा नहीं जा सकता अन्यथा वह दुर्नय होगा और अग्राह्य होगा।

जैन दर्शन का अनेकांत सिद्धान्त या स्याद्वाद इसी व्यापक, सापेक्ष और तर्क-सगतता के आधारों पर वस्तु का निरूपण करता है। इस प्रकार का निर्दोष कथन, जिसमें एक दृष्टिकोण सम्पूर्ण के सन्दर्भ में और सम्पूर्ण दृष्टि को एक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में व्यक्त किया जाता है, ही ज्ञानी का और उसके सन्तुलित सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व का परिचायक है।

शिक्षा में भी इसी व्यापक और उदारता के दृष्टिकोण का विकास वांछित है जो शिक्षार्थी में समायोजन का अभीष्ट विकास कर सके।

जैन दृष्टि से शिक्षा को विशेषताएँ

(१) गुरु के सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त करना—जैन शास्त्रों और ग्रन्थों में शिष्य के लिए 'अन्तेवासी' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'अन्तेवासी' का अर्थ है गुरु के निकट रहने वाला। इसका तात्पर्य यह है कि शिष्य को शिक्षा प्राप्त करने हेतु गुरु के निकट रहना चाहिए। गुरु से शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। गुरु जिस प्रकार अवधारणाओं को स्पष्ट कर सकता है, वह अन्य साधन से सम्भव नहीं। गुरु के जीवन से शिक्षार्थी जो साक्षात् ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वह अन्य प्रकार से नहीं उपलब्ध कर सकता। गुरु शिष्य एक-दूसरे के निकट रहकर एक-दूसरे को समझ सकते हैं। गुरु शिष्य को समझ सकता है और शिष्य उससे अभीष्ट मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है।

उत्तराध्ययन में इसी बात को एक गाथा से स्पष्ट किया गया है जिसमें **'वसे गुरुकुले णिच्चं'** कहकर विद्याध्ययन के लिए नित्य ही गुरु के पास गुरुकुल में रहने का निर्देश है।[11]

(२) तपोनुष्ठानपूर्वक ज्ञानाराधना—जैन परम्परा में बताया गया है कि शिक्षार्थी छोटे-बड़े तप की आराधना करते हुए शिक्षा ग्रहण करे। उत्तराध्ययन सूत्र में तपोनुष्ठान करते हुए शिक्षा ग्रहण करने के लिए 'उपधान' शब्द का प्रयोग किया गया है।[12] तपाराधना का एक शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है। सात्विक और हलका भोजन करने से विकारों/दोषों की उत्पत्ति कम होगी एवं मानसिक शान्ति बनी रहेगी। इससे शिक्षार्थी अध्ययन में एकाग्रचित्त बन सकेगा। तपाराधन से आहार-निहार (मल विसर्जन) की क्रियाओं में समय बचेगा जिससे अध्ययन में अधिक समय दिया जा सकेगा। तप ज्ञानाराधना में लगे दोषों की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त स्वरूप भी होगा।

(३) विनयशीलता—शिक्षा का आधारभूत गुण – अहंकार या अभिमान भाव का त्याग शिक्षार्थी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जितना-जितना विनय शिक्षार्थी में आता जायगा, उतना ही उतना उसका अभिमान गलता जायगा। यह अभिमान या अहंकार का भाव शिक्षार्जन क्रिया का एक बाधक तत्त्व है जो शिक्षार्थी को उन्नति की ओर अग्रसर नहीं होने देता। जैन विचारधारा में विनय को धर्म का मूल बताया है। श्रमण भगवान महावीर ने निर्वाण काल से पूर्व जो प्रवचन फरमाया उसमें विनय को प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान दिया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में प्रथम अध्ययन विनय अध्ययन है जिसमें विनय के महत्त्व के साथ गुरु के प्रति शिष्य द्वारा विनय की पर्याप्त व्याख्या की गई है।

विनय को दब्बूपन या मूर्तिवत् बनकर बैठे रहना मान लेना भ्रान्ति होगी। स्वयं भगवान महावीर से उनके प्रधान शिष्य गौतम ने हजारों प्रश्न किए जो भगवती सूत्र में संकलित हैं। केणट्ठेणं भंते! कहकर भगवान के उत्तर पर पुनः प्रतिप्रश्न किये हैं। श्राविका जयन्ती ने भगवान से अनेक जिज्ञासाएँ प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्रस्तुत की हैं। कहने का आशय कि जैन विचारधारा जिज्ञासापूर्वक प्रश्नोत्तर व समाधान को शिक्षार्थी का अविनय नहीं मानती। जिज्ञासा, प्रश्नोत्तर, तत्त्व-चर्चा के अनेक स्थल शास्त्रों और ग्रन्थों में आए हैं। इतना होते हुए भी शिष्य गुरु का विनय कर सकता है। उनके अनुशासन का पालन कर सकता है।

(४) **ज्ञान-क्रिया का समन्वय**—जैन विचारधारा में शिक्षा की व्याख्या करते हुए ज्ञान के साथ क्रिया के समन्वय पर बल दिया गया है। सम्यक्ज्ञान और सम्यक्दर्शन हो जाने पर भी जब तक सम्यक्-चारित्र की आराधना अनुपालना नहीं होगी, मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इसीलिए शास्त्रों में कथन किया गया—**'णाणस्स फलं विरतिः'** अर्थात् ज्ञान का फल त्याग है, चारित्र है। अन्यत्र भी ज्ञानियों के ज्ञान का सार बताया गया कि—ज्ञानियों के ज्ञान का सार यही है कि उनके द्वारा किसी भी जीव को कष्ट न हो। ऐसा व्यवहार हो उनका।[13] जैन सिद्धान्त की यह भी मान्यता है कि कोई द्रव्य या बाह्य रूप से चारित्र या संयम नहीं पाल सके, परन्तु जीव की मुक्ति तभी होगी जब वह भाव-चारित्र को ग्रहण करेगा।

इस प्रकार जैन परम्परा केवल ज्ञान को ही महत्व नहीं देती—**'चारित्तं खलु सिक्खा'** चारित्र ही सच्ची शिक्षा है, कहकर चारित्र के महत्त्व का उद्घोष कर रही है।

वर्तमान शिक्षा में जैन विचारधारा के उक्त महत्वपूर्ण बिन्दुओं को स्थान दिया जायगा तो हमारे समक्ष उपस्थित चरित्र का संकट अवश्यमेव दूर हो सकेगा। सुशिक्षा प्राप्त कर सुयोग्य नागरिक अपने और राष्ट्र को निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय 26 गाथा 12।
2. कोटिया महावीर—श्रीमद् जवाहराचार्य—शिक्षा, बीकानेर, श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ 1977।
3. वही, पृष्ठ 2।
4. दशवैकालिक सूत्र।
5. तत्त्वार्थसूत्र—आचार्य उमास्वाति।
6. ठाणांग सूत्र ठाणा 2।
7. आचारांग सूत्र अध्ययन 1 उ० 5/5।
8. तत्त्वार्थसूत्र।
9. उत्तराध्ययन सूत्र।
10. तत्त्वार्थसूत्र।
11. उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय 11, गाथा 14।
12. वही।
13. सूत्रकृतांग सूत्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org